3

एक सुखद अनहोनी*

लायक राम 'मानव'

प्यार, भरोसा और आत्मीयता, जोड़े बच्चे का पढ़ने से नाता। वास्तव में शिक्षक का स्नेहिल व्यवहार बच्चे के लिए सब कुछ सहज बना देता है। जटिल और नीरस लगने वाला विषय भी बच्चे के लिए सरस बन जाता है। इसलिए शिक्षक तथा बच्चे के बीच प्यार भरा नाता होना ज़रूरी है। यह कहानी भी कुछ ऐसा ही संदेश देती है।

कक्षा 6 में एक अध्यापक मुझे संस्कृत पढ़ाते थे। उनका नाम था छेदालाल। गोल-मटोल ठिंगना शरीर था। रंग काला, पर चेहरा-मोहरा बहुत अच्छा था। उनके चेहरे पर हमेशा मोहक मुस्कान खेलती रहती थी। उनकी यह मुस्कान सभी को प्यारी और भली लगती, केवल मुझे छोड़कर। क्योंकि उनकी मुस्कान और मेरे बीच में संस्कृत आकर खड़ी हो जाती थी। वे स्कूल में संस्कृत पढ़ाते थे और मै संस्कृत में कमज़ोर था। न मुझे रूप याद होते थे, न वचन, न श्लोक, न अनुवाद। मैं याद करने की कोशिश तो करता था। काफ़ी कुछ याद भी कर लेता था, पर सुना नहीं पाता था। मास्टर छेदालाल के सामने खड़े होते ही सब भूल जाता।

मास्टर जी को संस्कृत में जब कुछ सुनना होता, या पढ़वाना होता, तो सबसे पहले मुझे ही खड़ा कर देते। खड़े होने पर मेरा मार खाना तय था। मेरे हाथों पर चार-छः छड़ी, रूल या स्केल छप जाने के बाद ही कक्षा की शुरुआत होती। कभी-कभी तो घंटों मुझे बेंच पर खड़े रहना पड़ता। कभी-कभी वे मेरे किसी दूसरे साथी को मेरे गालों पर तमाचे मारने का आदेश देते। मेरे ही साथी अपनी पूरी ताकत से मेरे गालों पर तमाचे जड़ते। ऐसा करना उनकी भी मजबूरी थी। क्योंकि अगर उनका हाथ ढीला रह जाता तो छेदालाल उनके गालों पर ताबड़तोड़ तमाचे जड़ देते और उन्हें बताते कि तमाचे ऐसे मारे जाते हैं। तब मुझे और अधिक पीड़ा होती, जब मेरे साथी मुझे तमाचे मारते तब मास्टर जी मंद-मंद मुस्काते। कभी-कभी खिलखिला भी

* *प्रारंभ शैक्षिक संवाद*/वर्ष-2011/अंक-4/जनवरी 2012 से साभार (नालंदा, लखनऊ द्वारा प्रकाशित)

पड़ते। तब यह पीड़ा तमाचों से कम, मास्टर जी के हँसने से अधिक होती थी।

यह सिलसिला पूरे साल भर चलता। परीक्षा में मेरे सबसे कम अंक संस्कृत में होते। मुश्किल से पास होने भर के।धीरे-धीरे लगने लगा था कि संस्कृत मुझे कभी नहीं आएगी। अगर मेरे लिए कोई विकल्प होता, तो संस्कृत ज़रूर छोड़ देता। मेरी अजीब स्थिति थी। न मैं ठीक से समझ पाता था, न घर में कोई संस्कृत पढ़ाने वाला था। स्कूल में मास्टर जी से भी कुछ पूछने की हिम्मत नहीं कर सकता था। संस्कृत से मुझे डर लगने लगा था। यह डर मुझे दो साल तक अंदर ही अंदर खाता रहा। मुझे कमज़ोर बनाता रहा, पीड़ा देता रहा। परंतु तीसरे साल जब मैं कक्षा आठ में आया तो एकाएक चमत्कार हो गया। वह चमत्कार देखकर केवल मैं ही नहीं, सभी साथी हैरान थे। एक दिन वे स्कूल आए तो बहुत गंभीर थे। न तो मुस्करा रहे थे, न ही हँस रहे थे। उनके चेहरे की चिर-परिचित मुस्कान जाने कहाँ गुम हो गई थी। ऐसा पहली बार हुआ था। कक्षा में भी जब वे आए तो मुस्कुराए नहीं। उस दिन उन्होंने मुझे खड़ा भी नहीं किया। न मुझसे कुछ सुना, न पीटा। बस वे एक पूरा पाठ पढ़ाकर और समझाकर चले गए। उस दिन स्कूल में मेरा ऐसा पहला दिन था। पर मैं खुश नहीं था। पूरे समय मेरी आँखें मास्टर जी के चेहरे पर वही मुस्कान खोजती रहीं, जो मुझे कभी अच्छी नहीं लगती थी। मन बेचैन हो रहा था, उथल-पुथल मची थी। उनकी गंभीरता मुझे अंदर ही अंदर सता रही थी। उस दिन जब छुट्टी हुई तो मास्टर जी ने मुझे रोक लिया। कहा– ''सबको जाने दो। तुम थोड़ा रुककर जाना।'' यह सुनकर मेरे हाथ-पैर फूल गए। जाने आज क्या होगा? किसी अनहोनी की आशंका से मन काँप उठा। और सचमुच उस दिन एक ऐसी अनहोनी हुई, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। पर ये अनहोनी मेरे लिए बहुत सुखद थी। जो कुछ हुआ, उससे मेरे दो वर्षों से चले आ रहे सारे कष्ट दूर हो गए।

मास्टर जी ने मुझे अकेले में बिठाया और बोले– ''लायक! आज तक जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ। तुम अपने घर पर बता देना कि कल से मैं तुम्हें छुट्टी के बाद रोज़ एक घंटा संस्कृत पढ़ाऊँगा। तुम्हें घबराने की ज़रूरत नहीं है। मन लगाकर पढ़ना। संस्कृत तुम्हें ज़रूर आएगी।''

मास्टर जी ने इतना कहकर मेरे सिर पर हाथ रखा। उस समय मेरी आँखों से आँसू छलक आए। आँसू भी कैसे होते हैं, दुत्कार पाकर भी छलकते हैं और पुचकार पाकर भी। मेरे आँसू देखकर मास्टर जी के चेहरे पर वही मुस्कान खिल उठी, जो कहीं गुम हो गई थी। यह मुस्कान आज मुझे बहुत भली लग रही थी। दूसरे दिन से मास्टर छेदालाल छुट्टी के बाद मुझे संस्कृत पढ़ाने लगे। वही संस्कृत थी, वही मास्टर जी थे, वही मुस्कान थी, वही मैं था। अगर कुछ बदला था तो वह मास्टर जी का मन, मेरा मन और पढ़ने-पढ़ाने का तरीका। मैं खुश था, बहुत खुश था। अब मुझे संस्कृत से भय नहीं लगता था। मैं कक्षा में अब भी रोज़ की तरह खड़ा होता था, पर पहले की तरह पिटता नहीं था। संस्कृत मुझे आने लगी थी।

इतना सब होते हुए भी मेरे मन की उलझन अभी सुलझी नहीं थी। मास्टर जी में एकाएक आया यह बदलाव मेरी समझ से कोसों दूर था। हाँ, इस बीच एक और नई बात हुई। मास्टर जी की साइकिल पर बैठकर एक नया लड़का रोज़ उनके साथ आने लगा था। वह कक्षा सात में बैठकर पढ़ता था और उन्हीं के साथ रोज़ वापस जाता था। बाद में पता चला कि वह मास्टर जी का ही लड़का था। फिर धीरे-धीरे वह सब भी पता चल गया, जिसे जानने के लिए मैं व्याकुल था। मास्टर जी आठ कोस दूर गाँव से साइकिल से आते थे। उनका लड़का विवेक गाँव के पास ही एक स्कूल में पढ़ता था। वह गणित में बहुत कमज़ोर था। उस स्कूल में उसके साथ वही सब हो रहा था, जो मेरे साथ यहाँ संस्कृत में हो रहा था। विवेक चुप-चाप स्कूल में सब कुछ सहता रहा। पर घर में कभी कुछ नहीं बताया। मास्टर जी को इस बात का आभास भी नहीं हुआ। परंतु एक समय ऐसा आया, जब विवेक के लिए सब कुछ असहनीय हो गया। वह पूरी तरह टूट गया। उस दिन से उसने स्कूल जाना जोड़ दिया। मास्टर जी बहुत हैरत में थे। अचानक क्या हो गया, कैसे हो गया, कुछ समझ नहीं पाए। जब स्कूल की सारी बात पता चली तो उन्हें बहुत धक्का लगा। उनके चेहरे की मुस्कान उड़ गई। उन्होंने विवेक को बहुत समझाया, पर वह उस स्कूल में जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। बेटे की सारी व्यथा-कथा जानकर ही उन्हें शायद मेरी पीड़ा का एहसास हुआ था। उसी के बाद से से उन्हें मेरे अंदर अपने बेटे का दर्द दिखाई पड़ने लगा था। अब वे विवेक को अपने साथ इस स्कूल में लाने लगे थे। जब वे मुझे पढ़ाते थे तो वह भी साथ में बैठता था। मास्टर जी के अंदर आया यह बदलाव मेरे लिए वरदान साबित हुआ। कक्षा आठ की जब मैंने परीक्षा दी तो संस्कृत में सभी विषयों से अधिक नंबर मिले।

❑❑❑

कॉफ़ी जिंदगी है कप नहीं *

काफ़ी समय पहले की बात है। एक प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान के पुराने छात्र वर्षों बाद एक आयोजन में अपने एक पुराने प्रोफ़ेसर के घर पर एकत्र हुए। हल्की-फ़ुल्की बातचीत के बाद चर्चा जल्दी ही काम के बढ़ते दबाव और तनाव पर केंद्रित हो गई। बातचीत के बीच ही प्रोफ़ेसर अपने पूर्व छात्रों के लिए कॉफ़ी बनाने चले गए। जब वह वापस लौटे तो केतली में कॉफ़ी के अलावा एक ट्रे में ढेर सारे कप रखे हुए थे। कुछ बोन चाइना, पोर्सिलीन और सिरोमिक के महँगे कप थे और कुछ आम इस्तेमाल में आने वाले प्लास्टिक और काँच के सस्ते कप। जब सारे छात्र अपने कप उठा चुके तो प्रोफ़ेसर ने कहा, ''अगर आपने ध्यान दिया हो

तो हर किसी ने महँगे कप ही उठाए हैं। सस्ते और साधारण कपों को छोड़ दिया गया है। यह सामान्य बात ही है क्योंकि हर कोई अपने लिए बेहतरीन चाहता है, लेकिन यही हमारी समस्याओं और हमारे तनाव की जड़ भी है।'' उन्होंने एक लंबी साँस ली, अपने पूर्व छात्रों के चेहरों पर एक निगाह डाली और आगे कहा, ''आपको यह जानना चाहिए कि कप से कॉफ़ी के स्वाद में कोई गुणवत्ता नहीं आती। कई बार तो यह बहुत महँगा होता है और हम क्या पी रहे हैं वह भी इसमें छिप जाता है। दरअसल आपको कॉफ़ी चाहिए, लेकिन आप चुनते हैं कप। इस तरह आप कप पर निगाह गड़ा देते है। जीवन कॉफ़ी है, दोस्तों, कप नहीं। नौकरी, पैसा, प्रतिष्ठा, ये सारे कप हैं। कप जिनमें जीवन रूपी कॉफ़ी भरी होती है। भगवान ने हमें कॉफ़ी दी है, उसे हम चाहे जिस कप में पिएँ। कोशिश यह होनी चाहिए कि उस जीवनरूपी कॉफ़ी का स्वाद बरकरार रहे।

❑❑❑

दैनिक भास्कर, जबलपुर, मध्यप्रदेश, दिनांक 17 नवंबर 2011 से साभार।